एक अध्यापक शिक्षक की डायरी-V

''अच्छे बच्चे कैऽऽऽसे?'' - ''ऐऽऽऽसे''

रविकांत

अक्सर छोटे बच्चों के साथ काम करना व्यस्कों के लिए काफी तनावपूर्ण होता है। यह काम खास तौर पर तब और मुश्किल हो जाता है जब आपकी कक्षा में बच्चों की संख्या 20 से ज्यादा हो और आप बच्चों को मारपीट या डरा धमका कर या आंख दिखा कर या डंडी फटकार कर सिखाने में यकीन नहीं रखते हों। आपका यकीन कुछ इस तरह का हो कि बच्चों को वर्णमाला या एबीसीडी को रटवाने के बजाय भाषा (और बाकी विषयों को भी) को समझा कर सिखाया जाना चाहिए। उनके साथ खूब सारी बातचीत की जानी चाहिए और उन्हें भी आपस में बातचीत करने व मिलकर कक्षा के अंदर व बाहर काम करने के ढेरों मौके देने चाहिए। और कोढ़ में खाज यह हो कि आप बच्चों को सिखाने के मामले में स्वायत्त न होकर किसी जड़ सरकारी या मुनाफाखोर बाजारू तंत्र के सबसे कमजोर व छोटे से पुर्जे हों, जिसे कभी भी कोई भी अधिकारी या प्रबंधक किसी भी बहाने या बिना किसी बहाने के भी हड़काने की हैसियत रखता हो।

अक्सर ऐसे कई विद्यालयों की बहुत-सी कक्षाओं में जब अध्यापिकाओं को कोई निर्देश देना हो तो वे थोड़ी सी ऊंची आवाज में बोलती है,

''अच्छे बच्चे कैऽऽऽसे?''

और इसके जवाब में सभी बच्चों को एक सुर में ऊंची आवाज में कहना होता है,

''ऐऽऽऽसे।''

और इसी के साथ उन्हें अपने मुंह पर उंगली रख देनी होती है। अगले ही पल कक्षा में सुई पटक सन्नाटा छा जाता है। एक बार में अगर सन्नाटा छाने में कोई कमी-बेशी रह जाए तो इसे दो तीन बार दोहरा कर मनोवांछित सन्नाटा हासिल कर लिया जाता है।

दिल्ली के ही एक सरकारी विद्यालय में कुछ अध्यापिकाओं को मैंने कक्षाओं में इस तकनीक का इस्तेमाल करते देखा। इसे देख कर मुझे असहजता-सी हुई। मैंने कक्षा के बाद उनसे बातचीत भी की कि बच्चों को निर्देश सुनाने या चुप करने का यह तरीका ठीक नहीं है। कक्षा में शोर का स्तर बढ़ने के कई कारण हो सकते हैं, हो सकता है कि बच्चों ने आपका दिया काम जल्दी कर लिया हो और वे खाली हो गए हों और आपके पास उनके लिए कोई दूसरा काम न हो, या आप जिस काम को करवा रही हों उसमें बच्चों को कुछ समझ नहीं आ रहा हो, या आपका ध्यान किसी एक ही बच्चे को समझाने पर हो, आदि। जिससे बच्चे कक्षा में या तो शोर मचाने लगते हैं या ऐसा कुछ करते हैं जिससे आपकी कक्षा अव्यवस्थित-सी हो जाती है। एक-आध बार यह बात भी की कि इस निर्देश से बच्चों में यह संदेश भी जाता है कि चुप बैठना अच्छे बच्चों का एक गुण है, जबकि हम सभी जानते हैं कि खास तौर पर भाषा व आम तौर पर किसी भी विषय को

सीखने में आपस में तथा अध्यापिका या किसी बड़े के साथ बातचीत काफी मददगार होती है। लेकिन मेरी इस बातचीत का कोई खास असर नहीं पड़ा, हां इतना जरूर हुआ कि अध्यापिकाएं मेरे सामने इस तकनीक को काम में लेने से बचने लगीं।

मेरे पास भी इस निर्देश के गलत या नुकसानदायक होने के बारे में कोई व्यवस्थित तर्क नहीं बन पाया था, सो मैंने भी इस पर ज्यादा बातचीत नहीं की। लेकिन मेरे मन में इसे लेकर एक सवाल लगातार बना रहा कि इस चीज पर कैसे बातचीत की जाए कि सभी को इस निर्देश के पीछे छुपे अर्थ भी समझ में आएं और इसे काम लेने की निरर्थकता भी उनके सामने उजागर हो जाए। हालांकि उन सभी को तो यह युक्ति बड़े काम की लगती थी तभी तो सभी इसे बेखटके काम में लेती थी।

पिछले दिनों उत्तर प्रदेश के एक गांव के विद्यालय की पहली कक्षा के अवलोकन ने इस गुत्थी को सुलझाने में मेरी मदद की। उस कक्षा में एक अध्यापिका बच्चों के साथ भाषा शिक्षण पर काम कर रही थी। कक्षा में करीब 30-35 बच्चे थे। काम की शुरुआत में उसने एक कहानी बच्चों को सुनाई। सभी बच्चों ने मनोयोग से कहानी सुनी। कहानी सुनते ही कक्षा में सन्नाटा छा गया था जो कहानी के खत्म होने के बाद भी टूटने का नाम नहीं ले रहा था। इस सन्नाटे को चीरते हुए अध्यपिका ने बच्चों से कहानी से ही जुड़े सवाल पूछने शुरू किए। फिर क्या था कहानी के रंग में सराबोर बच्चों से कहानी के बाद सवाल पूछते ही अध्यापिका के सिर पर जवाबों की मूसलाधार बारिश-सी होने लगी। जवाबों की तेज बौछार से घबरा कर उसने तुरंत अच्छे बच्चे वाली युक्ति को आजमाया। पहला वाक्य सुनते वक्त लगा कि यह समस्या तो यहां भी मौजूद है और इससे जुड़ी खुद की दुविधा भी याद आ गई। लेकिन जैसे ही उसने इस निर्देश की अगली दो पंक्तियां बोली, उसे सुनते ही मेरे दिमाग की बत्तियां खट से जल गईं। अध्यापिका ने शोर भरी कक्षा में नीचे लिखे निर्देश दिए,

''अच्छे बच्चे कैऽऽऽसे?'' मुंह पर उंगली रख कर सारे बच्चे एक सुर में व ऊंची आवाज में बोले - 'ऐऽऽऽसे'
''मुंह पर ताला कैऽऽऽसे?'' मुंह पर उंगली रख कर सारे बच्चे एक सुर में व ऊंची आवाज में बोले - 'ऐऽऽऽसे'
''चाबी किसके पास?'' मुंह पर उंगली रख कर सारे बच्चे एक सुर में व ऊंची आवाज में बोले - 'मैडम जी के पास।'

पहले निर्देश के साथ अगले दो निर्देशों के जुड़ते ही मेरे सामने इन निर्देशों के अंदर छुपी समस्या एकदम शीशे की तरह साफ हो गई। अध्यापिका ने इस युक्ति को एक घंटे में करीब पांच से सात बार काम लिया। कभी उसने तीनों निर्देश दिए तो कभी उसका काम पहले निर्देश से ही चल गया। कभी वह इसे कक्षा में शोर के बढ़ जाने पर काम लेती थी तो कभी दो-तीन बच्चों की आवाजें आते ही उसे आजमा लेती थी। साफ था कि यह तकनीक असरदार तरीके से काम नहीं कर पा रही थी इसीलिए इसे बार-बार काम में लेना पड़ रहा था। इसकी एक वजह यह हो सकती है कि वह अवलोकनकर्ता की मौजूदगी की वजह से इस तकनीक के नाकाम होने के बाद के औजारों को इस्तेमाल नहीं कर पा रही हो।

कक्षा अवलोकन के बाद अध्यापिकाओं के समूह में इस युक्ति के इस्तेमाल पर बातचीत शुरू की गई। मैं चूंकि इस युक्ति को आधी-अधूरी पहले भी देख चुका था तो हठात् मैंने पहला सवाल यह पूछा कि आपने यह युक्ति कहां से सीखी। अध्यापिका ने बताया कि उसने इसे राजस्थान से सीखा है। फिर मैंने पूछा कि आप इसे क्यों इस्तेमाल करती हैं तो जवाब आया कि इससे बच्चों को चुप रखने व अपनी बात कहने में मदद मिलती है। यह बात तो ठीक थी कि अगर अध्यापिका के निर्देश देते वक्त बच्चे चुप नहीं होंगे तो वे उन निर्देशों को सुन कर समझेंगे कैसे। और इसी वजह से तो यह युक्ति इतनी मशहूर थी कि इसका दायरा राजस्थान से दिल्ली और फिर उसके बाद उत्तेर प्रदेश तक फैला हुआ था। बहुत मुमकिन है कि इसका दायरा इन राज्यों के आगे-पीछे, ऊपर-नीचे तथा दाएं-बाएं भी फैला हुआ हो।

इस पर बातचीत शुरू करने के लिए समूह में पहला सवाल यह रखा गया कि क्या सभी बच्चों को एक साथ अपनी बात सुनाने के लिए, उन्हें चुप करने के लिए, अध्यापिकाओं द्वारा काम में लिया जाने वाला यह तरीका ठीक है। इस सवाल के उठाते ही समूह में सन्नाटा छा गया। अध्यापिकाओं का यह अनुभव था कि अगर किसी घटना को समूह

में बात करने के लिए रखा गया है तो उसमें जरूर कोई न कोई बात होगी। सो कई अध्यापिकाएं जवाब देने के बजाय असमंजस में पड़ गईं कि उसे ठीक कहें या न कहें। ठीक न कहें तो यह पूछा जा सकता था कि फिर आप उसे करवा क्यों रहे थे और ठीक कहें तो उसकी भी वजह बतानी पड़ेगी। वे यह भी जानते थे कि समूह में होने वाली बातचीत सिर्फ सही या गलत जैसे वस्तुनिष्ठ व एक शब्दीय जवाब पर ही खत्म नहीं हो जाती।

शुरुआती आपसी बातचीत में जब इस रणनीति के व्यावहारिक उपयोग के अलावा कोई जवाब सामने नहीं आया तो इस शैक्षिक युक्ति के तीनों कदमों के मतलब को समझने पर काम किया गया।

यह तो साफ था कि इस युक्ति का कोई अकादमिक मकसद तो अध्यापिकाओं के पास भी नहीं था। अब तक इस युक्ति का एक मात्र प्रशासकीय मकसद यह था कि अध्यापिका अपनी बात सभी बच्चों तक पहुंचा सके। ताकि सभी बच्चे उस बात को ध्यान से सुन कर उसके मुताबिक काम कर सकें।

इस युक्ति को गहराई से समझने के लिए सोचा गया कि क्यों न सभी के साथ मिल कर हरेक कदम पर बोले जाने वाले वाक्य तथा बच्चों की उस पर प्रतिक्रिया को समझने की कोशिश की जाए।

तो पहले वाक्य का मतलब पूछा गया। एक अध्यापिका ने बताया कि इसका मतलब यह है कि चुप बैठने वाले बच्चे अच्छे होते हैं। चुप बैठना अच्छे बच्चों का एक खास गुण है। इसे बच्चों में विकसित किया जाना चाहिए। इसके जवाब में बच्चे अपना-अपना मुंह बंद कर बैठ जाते थे। वैसे यह इतनी असरदार थी कि बच्चे दूसरे वाक्य का इंतजार किए बिना ही पहले वाक्य के जवाब में मुंह पर उंगली रख लेते थे।

फिर दूसरे वाक्य का मतलब पूछा गया तो किसी ने बताया कि खाली मुंह बंद करने से ही बच्चे चुप हो जाएं ये जरूरी नहीं। तो उनके टपर-टपर बोलते मुंहों को पक्के तौर पर बंद करने के लिए दूसरा वाक्य है कि बंद किए हुए मुंह पर ताला भी लगाना है। इस ताला लगाने का एक्शन मुंह पर उंगली लगा कर किया जाता था। हम देख सकते हैं कि मुंह पर लगी उंगली के लिए ताला शब्द का इस्तेमाल इसलिए किया जा रहा था ताकि बच्चे समझ जाएं कि मुंह पर उंगली लगाना कुछ वैसा ही है जैसा हम घर से बाहर जाते वक्त उसके दरवाजों पर ताला लगाते हैं। यह भी साफ है कि बच्चों के मन में इस बात को लेकर कोई वहम न रह जाए इसलिए मुंह पर लगी उंगली को ताले का नाम दे दिया जाता है।

इस युक्ति का तीसरा कदम एकदम साफ कर देता है कि मुंह पर लगे उंगली रूपी ताले को खोलने का हक सिर्फ अध्यापिका के पास है इसलिए इस ताले की चाबी भी उसी के पास रहेगी। यानी अध्यापिका द्वारा लगवाए गए ताले की चाबी बच्चों के पास नहीं छोड़ी जा सकती है।

यह बात सही है कि व्यवहार में बच्चे बार-बार भूल जाते हैं कि इस ताले की चाबी किसके पास रखी होनी चाहिए। तब वे अपने विचारों व भावों को अभिव्यक्त करने की बैचेनी के चलते खुद ही इस ताले को खोल देते हैं। तब इस युक्ति का चौथा व छुपा हुआ क्रूर कदम सामने आता है, जिसके बिना इस युक्ति का असरदार होना नामुमकिन-सा है। अध्यापिका बच्चों को इस बात की याद दिलाने के लिए, कि इस ताले को खोलने का हक सिर्फ अध्यापिका को ही है, सजा का इस्तेमाल करती है, जो कि डांटने से लेकर मारना-पीटना या भरी कक्षा में बच्चे की बेइज्जती करना, कुछ भी हो सकता है। जैसे-जैसे बच्चे बड़े होते हैं वे यह सीख लेते हैं कि चुप रहना किसी भी शिक्षार्थी का सबसे बड़ा व खास किस्म का गुण है इसलिए बड़ी कक्षाओं के ज्यादातर भारतीय शिक्षार्थी अध्यापक की मौजूदगी में अक्सर चुप बैठे मिलते हैं। उनसे कई बार पूछने पर भी वे कक्षा में अपने मन की बात को अपने शब्दों में कहने में नाकाम ही रहते हैं।

उस वक्त तो हमारी बातचीत वहीं खत्म हो गई। लेकिन बाद में उपरोक्त घटना व उस पर की गई बातचीत पर दोबारा सोचा तो लगा कि प्रशासनिक तौर पर कामयाब रहने वाली या होती नजर आने वाली यह युक्ति असल में भाषा शिक्षण

तथा शिक्षा के व्यापक मकसद की जड़ों में मट्ठा डालती नजर आती है ताकि उन दोनों के पेड़ कभी फल फूल न पाएं। यहां पर मैं इन दोनों चीजों से जुड़े एक-एक असर का जिक्र करके अपनी बात पूरी करूंगा।

पहला, यह युक्ति वैसे तो सभी विषयों में इस्तेमाल की जाती है लेकिन भाषा की कक्षा में इसे खास तौर पर इस्तेमाल किया जाता है। यह युक्ति भाषा सिखाने की राह में एक बड़ा रोड़ा भी बन जाती है। चूंकि अध्यापिका के लिए चुप्पे बच्चे, अच्छे बच्चों के नमूने यानी आदर्श होते हैं। और इसलिए वह बार-बार बच्चों को चुप बिठाने के लिए इसका इस्तेमाल करती है। बहुत-सी अध्यापिकाएं इसका बेजा इस्तेमाल भी करती हैं। जब भी उन्हें लगता है कि कक्षा में शोर की मात्रा कम होनी चाहिए तो वे बेधड़क इसका इस्तेमाल कर देती हैं। भाषा शिक्षण की मुश्किल यह है कि मौखिक भाषा तो सुन कर तथा बोल कर ही सीखी जाती है व इसके साथ ही साथ लिखने-पढ़ने के लिए भी बोलना जरूरी होता है। हमारे देश में, जहां के शिक्षा तंत्र ने अभी तक इस बात को कबूल तक नहीं किया है कि देश के ज्यादातर बच्चों की मातृभाषा स्कूलों में पढ़ना-लिखना सिखाई जा रही राज्य व राज-भाषाओं से जुदा है। वहां पर कक्षा में बोलने पर हुई तालाबंदी, बच्चों के दिमाग में स्कूल व घर से जुड़े अनुभवों को जोड़ने के एक माध्यम व औजार को कक्षा से बेदखल कर देती है। यह अकारण ही नहीं है कि एक तरफ तो देश के करोड़ों बच्चे सालों विद्यालयों में रहने के बावजूद ठीक से पढ़ना-लिखना सीख नहीं पाते और जो किसी न किसी तरह सीख भी लेते हैं वे अपने मन की बात व अपने भावों व विचारों को अपने शब्दों में जाहिर करना नहीं सीख पाते।

दूसरा, इस युक्ति की समस्या यह है कि यह कक्षा के बच्चों के सामने अच्छे बच्चे की किस तरह की तस्वीर पेश कर रही है। उसमें किस तरह के गुणों को बढ़ावा दे रही है। बहुत साफ है कि यह कारण व बिना कारण चुप रहने वाले बच्चों को बढ़ावा देना चाहती है। हम सभी जानते हैं कि हमारे ज्यादातर विद्यालयों में जितना पूछा जाए उतना ही बताने व बाकी वक्त अपना मुंह बंद रखने की हिदायत दी जाती है। यानी यह बच्चों को उनके मन व कल्पना की दुनिया की बातों पर लगाम लगाने की एक कोशिश है। इसमें एक संदेश यह भी साफ तौर पर निहित रहता है कि कक्षा व विद्यालय में वही बातें व वही भाषा काम की है जिसमें जाहिर करने की अध्यापक व उसका नियंत्रक शिक्षा तंत्र अनुमति दे, बाकी सभी विचार, कल्पना व चीजें फिजूल हैं। यह युक्ति इस बात में भी यकीन रखती है कि विचार विमर्श करना, बहस करना फालतू की बातें हैं। काम की बातें वही हैं जो अध्यापक व उसके नियंत्रक तंत्र से आती हैं या जिनकी अनुमति दी जाती है। आप देख सकते हैं कि यह पूरी युक्ति एक खास तरह से अनुशासन को बनाने के हथियार की तरह काम कर रही है। जो हमेशा अध्यापिका के पास रहता है, ऐसी अध्यापिका के पास जो कृष्ण कुमार के शब्दों में ''दब्बू तानाशाह'' है। इसका नतीजा यह होता है कि वह इसका मनचाहा इस्तेमाल करती है, जरूरत होने पर भी और जरूरत ना होने पर भी। और यह बच्चों को आज्ञाकारी नागरिक बनने का प्रशिक्षण बचपन से ही देना आरंभ कर देती है जो सत्ता की बात बिना सवाल-जवाब किए मान लें व तभी बोलें जब सत्ता कहे व वही बोलें जो सत्ता सुनना चाहे। अगर लोकतांत्रिक समाज में शिक्षा का एक प्रमुख मकसद स्वतंत्र चेता विवेकवान व्यक्ति का विकास करना है तो बच्चों को आज्ञाकारी इंसान के तौर पर विकसित करना उसकी बड़ी नाकामयाबी है।

बहुत साफ है कि एक प्रशासनिक तौर पर कामयाब और मशहूर युक्ति शिक्षा के खास व आम (यानी व्यापक) मकसदों को किस कदर तबाह कर सकती है। ◆

लेखक परिचयः करीब 23 वर्षों से प्रारंभिक शिक्षा में शिक्षक शिक्षा, शिक्षण सामग्री एवं पाठ्यपुस्तक निर्माण, शिक्षाक्रम और अनुवाद के क्षेत्र में कार्य। हाल-फिलहाल विभिन्न संस्थाओं के साथ बतौर शैक्षिक सलाहकार कार्यरत हैं।

संपर्क : 9414057424; ravikaant@gmail.com